आमुख

ैं न लेखक हूं, न कवि हूं, न आलोचक हूं, न ही
नीषी विद्वान् हूं । मैं तो हूं मात्र प्रभु के दर्शन करने
का, प्रभु का चरित्र गाने का, अपने को प्रभु के चरणों
ें समर्पित करने का व्याकुल मन पागल !

रे हृदय सरोवर में उठती विचिओं का लेखन शब्दों के
ाध्यम से करता हूं । शब्द शास्त्रीय हैं या छोटे, विषय
ुरूह है या सरल, प्रवाह मन्द है या तेज मुझे ज्ञात
हीं ।

 चल मन ! ले चल मेरे उस प्रभु के पास, जहां शिव
ान है, जहां जगत का विराम है, जहां काम निष्काम
ै, जहां भाव मूक है, सत्-चित् आनन्द की उपलब्धि,
ोक्ष की लयता और भक्ति की तन्मयता है ।

ज्ञान का आचमन

मेरा क्या सामर्थ्य है किसी के भावों का विश्लेषण करूँ। मैं तो मात्र यही इच्छा रखता हूँ कि इन भावों के सुमन सुरभि का नित्य ग्राहक बनूँ, उपदेशामृत का आचमन करूँ विचारों की त्रिवेणी में स्नान मज्जन कर अपने कलिमल धोऊँ; अपने जीवन को धन्य करूँ, इन उपदेशों को प्राप्त कर। ये भाव सुमन हृदय की अथाह भक्ति पीड़ा के अश्रु मुक्ता हैं, जिसमें कहीं अहं, माया, मोह, दम्भ का आभास भी नहीं। बड़ी-बड़ी पोथियां भार स्वरूप हो सकती हैं जहां हृदय में प्रभु के लिये पीड़ा या तड़पन नहीं। और एक भाव कण भी प्राप्त हो जाय तो भव सागर से पार हो सकते हैं।

तो इस पुस्तक में तो सारे ही भाव कण हैं जो भविजन को मोक्ष की ओर बढ़ा सकते हैं।

इति शुभम् !

—सेवाभावी मुनि सौभाग्यविजय

चिन्तन की रश्मियाँ

रचयिता

श्रीविजयविद्याचन्द्रसूरि

जन्म कल्याणक

"पथिक"

श्रमण भगवान् महावीर !

जन्मोत्सव !

ऐसी अन्धेरी रात का अवसान,

जिसमें मौत की हिंसा हुई ।

पाप ताप परितप्त जग में,

दया करुणा की मंदाकिनी वही थी ।

स्वार्थ, अधर्म, दुःख, दुखित जनता,

विमल मन पुलकित हुई थी ।

श्रमण प्रभु महावीर जन्म से,
धरा दिप्त प्रहर्षित हुई थी ।
धन्य हुआ संवत्सर ऋतु मधुमास,
तिथि त्रयोदशी पक्षे शुक्ल भी धन्य हुआ,
जिसे जन्मोत्सव का सुअवसर प्राप्त हुआ ।
कोकिला इस मंगल वेला में,
पंचम स्वरों में गा रही थी ।
रसीले आम्र भी द्विगुणित फले थे ।
प्रकृति भी शृङ्गार में,
मृदु मधुरी नृत्य में थी झूमती ।
प्रभु पद चरणों को स्पर्श करने,
ज्योत्स्ना धरा पर आ रही थी ।
[illegible] मुस्काता गगन में,
[illegible] सुरभित केशरों से ।
[illegible]
[illegible] ।
[illegible],

सुरसरी पुष्प झरते थे विकीर्ण
आसुरी पर सात्विकी का था वरण ।
वासव हुआ था प्रकम्पित,
कौन अवतारी धरा पर ।
चौसठ इन्द्र अमरों ने अभिषेक प्रभु पर ।
मिला था अभयदान स्वयं क्षय को,
पृथ्वी भी हुई थी आज लघुत्तर,
भार से अन्याय के ।
अब मिटेगा दुःख जन का,
अवतरे प्रभु हैं धरा पर ।
वंदना करता अकिंचन जन प्रभु को,
स्वीकार करलो मुझ अकिंचन का नमन !
वेदन समर्पण ! !

श्री वर्द्धमान का वैराग्य

"पथिक"

•

सांसारिकता का बन्धन मन छोड़ा,
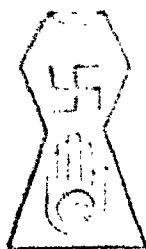
मोह मल्ल को पछाड़ा ।

नंदीवर्धन की

मिल गई आज्ञा ।

जीवन संयम में सजा

प्रियदर्शना पुत्री का

तज दिया प्यार
यशोदा के भरतार,
आये उपवन में
सुसज्जित शिविका से
उतर गये,
अशोक की शीतल छांह में
तज दिये तन के शृङ्गार,
क्षण भर का संसार।
देव, देवी, मानव, वासव,
देख रहे थे प्रमुदित।
पंच मुष्टि का लोच,
मनःपर्यव पाया ज्ञान।
इन्द्र ने देव दुष्य वस्त्र डाला
स्कन्ध पर,
दिया धर्मलाभ !
मगशिर वदि दशमी के दिन,
कषाय कलिमल धोने
बन गये विहारी।

है ।

तब तरुण श्रमण ने

[illegible] हो

कुछ उदास हो,

योगी बोला, गायें नहीं आईं ।

कुटीर घास की बनी है ।

क्षुधित कंकाल गौएं,

कुटी की ओर ललचाईं,

बार–बार आईं !

कुटी की रक्षा में नियुक्त योगी,

निर्दय गौओं को ताड़न करता है ।

कहता है,
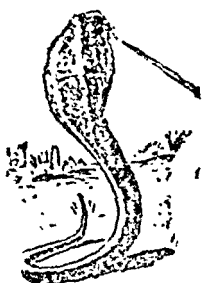
चंडकोशिक को उपदेश

"पथिक"

अरावली की घाटियों
सघन-घन-वृक्षावलियों
निम्ब-दाड़िम-वकुल-अशोक
सघन निकुंज में
शुक-पिक-नीलकण्ठ
खग-कुल कलरव
पीयूषमय चहुं दिशि,

दिव्योषधि से भरे सघन वन में
निर्वाह करते श्रम मानव ।
सर्पिल, हरित, वर्तुल पगदण्डियाँ
जहां जारही शवरी, किरात - अहीरियां
मृगवनिता का सा उनका जाना ।
मधुर कण्ठ से गुनगुनाना ।
अहीरियां ले जारही थी,
दधि दुग्ध पूर्ण मटकियां ।
देखा उसने
एक तपस्वी प्रमोद भाव में ।
जारहे थे संयम भाव में ।
अपने मन की कलियां खोली ।
अहीरियां विस्मित बोली ।
ओह ! सुनते हो योगी !
किधर जाना है ?
फणिधर रहता है,
इस मार्ग में ।

सताता है मानवों को,
पशु पक्षियों को,
उचित नहीं जाना।
नहीं माना।
करुणा के सागर
प्रतिबोध देना था,
क्रोध का फल जाना था।
जैसे लोलाम्र किसलय
मुस्काते जा रहे थे।
प्रभुवर द्वार पर आगये
ध्यानस्थ मुद्रा में
फैल रहा था दिव्य तेज
नहीं थी तन्द्रा
तन मन में समाधि
नहीं थी व्याधि।
फुत्कार करता
भयावह फणिधर आया,
लिपटा चरणों में।

अनार्य प्रान्त में विहार

"पथिक"

●

देव-देवी के नाम पर
हिंसा का साम्राज्य ।
दया धर्म शांत
अनार्य प्रान्त ।
जनता में दया का दान
कहीं नहीं ।
देख रहे थे घूम घूम,

मुनि पर

कल्याण हृदय से,

निकली करुणा की धारा

जन हित में

जिसका अन्तर

करुणा सिन्धु

अनार्य लोगों ने देखा इनको

जैसे राहु ने ग्रसा इन्दु ।

पकड़ कर

बंधन कर कूप में डाला

कूप से निकाला

कहते चोर चोर !

करते शोर ।

कुत्तों को छोड़ा,

दौड़ दौड़,

पीछे पीछे मारते पत्थर

चाल फिर भी मन्थर,

शान्त स्वभावी सोचते थे अन्तर

मिला नहीं स्थान

चारों ही मास

किया नहीं निवास

फिर भी नहीं उदास

हे पुरुषोत्तम !

वन्दन ! वन्दन !!

चारों ज्ञान वाले

वर्धमान !

कर दिया चारों आहार का त्याग ।

जीवों पर करुणा बरसाने वाले,

यथा, शुष्क मरु में

स्नेह-सुधा सरसाने वाले ।

दे प्रतिबोधाम्बु को

मेघमाला

तिराये अनेकों,

भवोदधि से ।

छःमासी तप का पारणा

"पथिक"

•

चम्पानगरी का उद्यान
प्रभुवर पधारे थे,
जनता, दधिवाहन
उपासक बने थे।
अनुयायी बने थे।
धारिणी रानी की पुत्री
वसुमति

लावण्य रूप में
अति मनोहरा, सुशीला, विनय–विवेकी।
परम भक्ता शत्रु आया
घेर ली नगरी
दधिवाहन बंदी बना
धारिणी पुत्री वसुमति को ले भागी,
सुभट मिला
रथ में बिठा
लेकर गया वन में
धारिणी ने देखा
कामान्ध
मरण हुआ धारिणी का
वसुमति रोने लगी,
सुभट बोला
मत डर मत डर
रो मत क्रन्दन मत कर,
अनर्थ हुआ
मांगु प्रभु से दुआ

[illegible]

करुणा सिन्धु शासन देवी

तत्क्षण प्रकट हुई

छेदन किया गणिका का नासिका कर्ण,

त्राण किया शील बाला का

भाग्य के संयोग से

धन्नावह जो चरित्र में था पवित्र

उसे ले आया अपने घर

मूला नव यौवना कुमारी देख घबराई

कटाक्ष व्यंग में बोली

चौथे पन में तुम्हारी बुद्धि क्यों है डोली ?

प्रभु के कानों में कील

"पथिक"

जृंभिक ग्राम का रम्योद्यान
ग्रीष्म के प्रचण्ड तप में
शीतल सुरभि में गह् गह् उपवन
मध्याह्न का समय
कृषक जा रहे थे अपने–अपने खेतों में
श्रम विन्दु मुक्ताओं को बोने
यत्र तत्र गोवालक

नरा रहे थे अपने-अपने चेलों को
अपधूनी तप रही थी उपवन में
रम रहे थे योगी
आत्म स्वरूप में
संयमी ज्ञानी
किसी पर नहीं थी ममता
सुखाम्बुज पर समता
कृत-कर्मों के बन्धन
भव-भव में उदित होते हैं ।
वासुदेव के भव में भी
हुआ था ऐसा ही भव बन्धन
आज्ञाहीन शैयापालक के कर्णों में
उन्होंने उष्ण शीशा डलवाया था,
पूर्व भव का वैर लेने
वही जीव आया था ।
उत्पन्न जीव वैर लेने के लिये
वहीं पर गया
नहीं थी दया,

क्रूर हृदय वाला
कर कर चाले बोला
अरे दुष्ट यहां क्यों आया
क्यों करता माया
तूने ही वृषभ छिपाये मेरे,
कर्तव्य क्या है यही तेरे !
तीक्ष्ण काष्ठ कील घड़
कानों में ठोसी आगे बढ़
अन्याय से पृथ्वी डोली
स्वयं करुणा रोली
फिर भी वे रहे अविचल !

निर्वाण कल्याणकोत्सव

"पथिक"

ाव स्नेह पूरित

निर्वाण कल्याणकोत्सव

"पथिक"

भक्ति भाव स्नेह पूरित
दीपावली
आराध्य की गुणावली
प्रतिगृह प्रासाद चैत्य-हट्ट
ज्योत्सना में प्रकाशित
मुदित मन मयूर

भविजन का

आबाल वृद्ध तरुण युवाजन

करते प्रकाशित

अज्ञान तिमिरावृत चित्त

दर्शन, ज्ञान, चारित्र के प्रकाश में

निर्वाण महोत्सव

भव-भव पापों का मोचन

शम-दम-दया का आलोकन

मुक्ति क्षण, दीपोत्सव

युग-युग का शाश्वत दीपोत्सव !

निर्वाणोत्सव !

कोटि-कोटि आत्म दीपों का

ज्ञानोत्सव !

जिन शासन का भव्योत्सव

निर्वाणोत्सव !

हे, जिनाराध्य

स्वर्णिम प्रभा से

प्रतिहत कोटि भान

शत-शत करता स्वागत
निर्वाणोत्सव !
प्रभु का निर्वाण सुन
किया था गौतम गणधर ने चिंतन !
विरह में क्रन्दन
हा ! ममाराध्य ! वीतराग !
मुझसे क्यों विराग,
पथिक मुक्ति पथ के,
देदिप्यमान दिनकर जिनाकाश के !
तव विरह में
अज्ञान तिमिराक्रान्त होगा
भव जीवन !
गद्-गद् गौतम ने
किया था विलाप
मुक्त करो मेरा भव ताप
मुझे नहीं थी चाह मोक्ष की
मेरे तो शरण थे आप
चाहना थी मात्र सानिध्य की

भावों को गौतम-गणधर ने
मिला आत्म बोध
हटा मोह, भ्रम
स्वयं प्राप्त हुए कैवल्य को
गौतम।
तत्क्षण इन्द्रादि सुर आकर
रचा महोत्सव कैवल्य का।
चला आ रहा युग-युग से
प्रभु का दीपोत्सव ! निर्वाणोत्सव !!
बेलोपवास
विविध तप से पूरित भविजन
करते पूजन
विविध द्रव्य भावों के सुमन
हे भव-भव तारक,

भव बन्धक वारक
जिन धर्म प्रकाशक
तव चरणाम्बुज में
निर्वाण महोत्सव पर
करता हूं समर्पित
भाव माल्यार्पण
जय जय दीपोत्सव
निर्वाण महा महोत्सव
निर्वाणोत्सव ।

राजकुमार

[illegible]

'[illegible]'

•

करि कलभ सा सुकुमार

फिर भी धीर वीर प्रशांत

यौवन रूप से प्रतिहत के सहस्रों भार

किसलय सा कोमल था

'गजकुमार'

मर्यादित सागर सा

नगपति सा अडिग

'राजकुमार'

हो गई थी विरति वय के प्रथम क्षण में,

पंचव्रतों के स्वयंभूत अवतार
आत्मविजयी ने ग्रहण की
संयम तप साधना की आज्ञा
तात, मात और भ्रात से
नव परिणीता सुकुमारी रानी थी
जिसका मिटा नहीं था मांगलिक सुहाग
यौवन के प्रासाद द्वार का स्पर्श
अभी तक नहीं हुआ था
कौमार्य युवा की संगम स्थल
उस मृगवनिता सी चंचल बाला का
प्रणय छोड़
कुमार चला साधना हेतु श्मशान
तन्मयहीन कायोत्सर्ग में ।
सुना श्वसुर ने त्याग सुता का
परिणीता देन्या बाला का
मुग्धा शिशुबाला का वात्सल्य
कर रहा था अधीर, जला रही थी पीर
सहस्त्रों चित्कार कर रहा होगा

विरही मन गुरों का

दावानल सा स्वर्ग जलने लगा क्रोधाग्नि में

रोम-रोम से जल उठा प्रतिकार का आक्रोश

मेरी पुत्री के जीवन का हत्यारा

कहाँ गया वह धूर्त नपुसंक

योगी बन बैठा

हृदय में दुःख की ज्वाला लिये जा रहा था

एक ग्राम

बीच पन्थ में श्मशान भूमि थी

जिसमें योगी ध्यान मग्न था

जाना पहचाना

हा ! हा !! हा !!!

दुष्ट मिल गया सफल हो गई मेरी यात्रा

काल मूर्ति हो बढ़ा उधर ही

मुनि मस्तक पर मृत्यु पिण्डी में रख दिये

श्मशान के प्रज्ज्वलित अंगारे

यथा-क्रोधाग्नि के स्फुलिंग

जला रहा था जामातृ का

क्षण भंगुर शरीर चर्म देह
सन्नद्ध कर न सका स्नेह
रक्त का जलना
कर न सका विचलित उस
मानव दानव को
किन्तु कुमार के निश्चल समाधि में
कहीं नहीं थी क्षण भी हलचल
उसमें था संयम का अनन्त बल
अनित्य भाव का अनित्य सौख्य
शुक्ल ध्यान का अनन्त योग

[illegible]

[illegible]

[illegible]

•

परमरी संस्पर्श मात्र

कामिनी के गात्र का

प्राप्त कर उसको तुम्हीं ने

धन्य माना।

क्या यही है परमसुख

मृगतृष्णिका की भूल को है रजत जाना

है क्षणिक आनन्द वपु के स्पर्श का

है नहीं उत्कर्ष जीवन का इसीसे

है नहीं प्रच्छन्न यह सत्य किससे

पूछ प्रभु महावीर के उन चरण डग से
जो बढ़े थे भोग से जो योग में
तथागत बुद्ध के गृह त्याग से भी पूछ जिसमें
पुत्र राहुल और गोपा गेहिनी का स्नेह
कुछ न वार सका
है नहीं यह ज्ञान जिसको
रंक पामर जीव जग के
रूप को पहचानता नहीं
वासना का सुख
एक केप्सूल ऐसी
विषभरी घातक मगर शक्कर लपेटी
जो प्रमादी
आत्मगुण को है कभी लखता नहीं
अभिराम स्वात्माराम में
जो कभी रमता नहीं
जादूगरी जग के खिलाड़ी की
जिन्होंने बाजीगरी जानी नहीं
बस निरन्तर अर्थ के व्यामोह में

है घूमता पागल निरन्तर
है नहीं जाना प्रभु के चरण पद को
है नहीं जाना स्वयं को
है नहीं ज्ञान जिनको
क्या किया है ? क्या लिया है ?
इस उधारी जिन्दगी में
दृष्टि के पथ में निहारा क्या ?
तुम्हें संदेश देते हैं निरन्तर
प्रकृति के ये खेल
मिला जो कुछ समय
चेत ! भविजन चेत ! !

है घूमता पागल निरन्तर

है नहीं जाना प्रभु के चरण पद को

है नहीं जाना स्वयं को

है नहीं ज्ञान जिनको

क्या किया है ? क्या लिया है ?

इस उधारी जिन्दगी में

दृष्टि के पथ में निहारा क्या ?

तुम्हें संदेश देते हैं निरन्तर

प्रकृति के ये खेल

मिला जो कुछ समय

चेत ! भविजन चेत ! !

क्षणभंगुरता

☀

"पथिक"

•

देखा !

एक दिन जिन भव्य प्रासादों झरोखों से

कृणित किंकिणी नृत्य की झंकार में

वार वनिता के कटाक्षों में

थे निरन्तर वार, जिनसे पौरुष प्रताड़ित

मादक नशीले मधु के निरन्तर पान होते

अमा के अन्धेरे से घने अज्ञान के आवरण

दृष्टि भ्रम है, समझे अन्धेरे को उजाला

तभी तो कर्म के आश्रव निरन्तर नित्य होते

सत्य शाश्वत सत्य है !

था यही, होगा यही

भ्रम है, मोह जाल परिवार, वन्धु

कौन माता कौन भ्राता कौन तुम और कौन मैं हूं ?

सोच लें पहिचान लें सम्बन्ध सबका

छोड़ वपु यह प्राण तो निश्चित चला ही जायगा।

झूँठे प्रेम से ले लो किनारा

यथा सर्प कंचुक छोड़ता है

ग्रहण करलो

पाप प्रकृति से विरति

पुण्य प्रकृति की रति

पुण्य से ही योग और संयोग होता

पंच परमेष्ठी प्रभु का

जप निरन्तर, जप निरन्तर !

तप निरन्तर, तप निरन्तर !

सिद्धि की शिव प्राप्ति है।

विचार

"पथिक"

•

विश्वास

विभुचरण

विद्या

विनय

ये चार गुण मानवता के श्रेष्ठ रत्न हैं।

आज का मानव भूल गया अपना आलोक

पहुंचा चन्द्रलोक

विकल्प विज्ञान

ज्ञानियों का ज्ञान सत्य का संधान

चन्द्रलोक

"पथिक"

चांद ! तुम्हारी किरण प्रभा
शीतल गुण देती है,
मानव को सुहाती है
दौड़ते हैं उस ओर
ले 'अपोलो'

नहीं है संसार का छोर
फिर है वृथा ही ममता करना
मानव जीवन कितना !
यान उड़ाकर उतरे हैं कहीं

ये गीत

[illegible]

"[illegible]"

•

ये पर्व

क्यों मनाये जाते हैं ?

वासना प्राचीर और दुर्ग में

जब शत्रु आते हैं

यह मोर्चा है

अन्तर्द्वन्द्व वासनाओं का

वासनाओं की विजय में उपस्थित

संयम सेनापति

जीवन अधिपति

पंचभूत

•

नाटक

•

पोल

पंचभूतों में भी पोल

ज्ञानियों के बोल

विश्वास से तोल

हृदय के पट खोल

है अनमोल

मानव में पोल

देह पिंजर पोल

स्थावर जंगम में भी पोल

जरा

१०

'नाटक'

•

अस्थिमय देह पिंजर

शुष्क चर्म

गलित देह

पलित केश

दशन विहिन

चन्द्र मुख

कामदेव सा सुन्दर

यौवन मदान्ध मत्त हस्ती

कामिनीकुल बद्ध बाहु

अहिंसा

"पथिक"

मन से

वचन से

कर्म से

किसी जीव को नहीं सताना

मन नहीं दुखाना

वाणी की असि भी किसी के हृदय पर नहीं गिराना

आत्मा में जो सुख की अनुभूति

वही पराए में अनुभव होना है अहिंसा

अहिंसा दया है

बोलते तीर्थ

"पथिक"

देखो क्षितिज के पार
दिखाई दे रही है
गिरि श्रृङ्गमालाएं
अर्बुदाचल की
मध्य में स्फटिक सुमेरु सम
देलवाड़ा महातीर्थ
सृष्टिकर्ता के कला की उत्कृष्ट कृति
वास्तु और स्थापत्य की अनुपम कृति
है विधाता की यही अन्तिम कृति

.प ने बोझिल यात्री
न्य होते हैं यहां पर
चरम शांति का यही स्थल
तीर्थ है ऐसा कहीं पर ?
मन यहां मुद् चकित होता
: पावन धन्य होता
ान कर
पने कल मलश धोता
ाप्त धातुमय प्रतिमाएं यहां पर
अचलगढ़ के तीर्थ देखो !
भव बन्धनों से मुक्त करती
भक्ति से है युक्त करती
शिव नगर संयुक्त करती
भेज देती मोक्ष धाम को
सफल करती सर्व काम को
शत्रुंजय की तीर्थ माला
गिरनार की गिरिशृङ्ग माला
समेतशिखर की अनुपम शोभा

[illegible]

[illegible]

के [illegible]

धन्य है शिखर [illegible]

धन्य यात्री जो यहां पर

मूक प्रस्तर बोलते हैं

मार्ग दर्शन दे रहे हैं

आत्म सिद्धि है मिली कई योगियों को

कृत-कृत्य होते हैं यहां पर

देव-दानव, सुर-असुर, गंधर्व-किन्नर

नमन करता श्रृंखला को

शिव धाम है

जनम जनम का फेरा

"पथिक"

प्रकृति और पुरुष
पुरुष और नारी
हेतु और कर्त्ता
ब्रह्म और माया
योग और वियोग
जन्म और मृत्यु
सृष्टि के भ्रम में दो प्रधान हैं।
एक सर्जनहारा है
एक संहार का हेतु है

कौन करता है सृष्टि का पालन
जो व्यापक है
कहते हैं ये तीन शक्तियां
ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य
ये सृष्टि के व्यतिक्रम में प्रधान हैं
इन्हें भी कर्मराज ने कैसा काम दिया है
विरति भाव
अचल धाम यतीन्द्र मुनि का पद केवल
उद्योतमय
सिद्धात्मा की वन्दना !
शत-शत वन्दना !!

पापी कौन ?

रु:

"पथिक"

•

पापी कौन ?

निन्दा करता है

पर दिखता मौन

कच्छप का पृष्ठ मात्र आवरण

जिसमें वह मनचाहा छिपता

वैसे ही

मात्र आवरण धर्म ध्यान का रखकर

नित्य पापमय रहता

करुणा की ममता में दिखता

किन्तु बकवत् मत्स्य निगलता

क्षुधित पिपासु व्यथा युक्त

अरिहन्त वीर वाणी पीयूष का
आचमन होता
है नहीं जाना जिन्होंने प्रभु के पास
चरम पद को
है नहीं जाना स्वयं को
है नहीं ज्ञान जिसको
क्या लिया है, क्या दिया ?
दृष्टि के पथ में निहारा क्या ?
है तुम्हें
संदेश देते
नियति के ये खेल
मिला है कुछ समय
चेत भविजन चेत !

विरोधाभास

"पथिक"

•

जयन्त और मधुकर
कौन ?
विजय पाता है
जयन्त
भवन पर
मधुकर
गुञ्जन करता है
पंकज पराग पर
दोनों प्रतिस्पर्धी
विरोधाभास

दुःख माना
इसीलिये तप जप ध्यान क्रियामय जीवन
परम पवित्र
प्राणी आचरण में लाता है
मैत्रिय भाव की भावना में
क्षमायाचना करता
अपराधों की क्षम्यता
यही है
शान्ति
तप सम्राटों के सन्नाटों की
विश्व विजय !

दुःख माना

इसीलिये तप जप ध्यान क्रियामय जीवन

परम पवित्र

प्राणी आचरण में लाता है

मैत्रिय भाव की भावना में

क्षमायाचना करता

अपराधों की क्षम्यता

यही है

शान्ति

तप सम्राटों के सम्राटों की

विश्व विजय !

शल रंगरेज सा

र का भी

ग्राचरण पट्ट रंजित-मंडित किया

सद्मार्गदर्शी

बने उपकारी

नहीं देखा अपने कुटुम्ब की ओर

खोज लिया सारयुक्त तत्त्व

दर्शनामृत पी-पी

उन्नत गुणों को

उज्ज्वल किया, स्वयश पोमचा

कुशल रङ्गरेज बने

स्वयं के रङ्ग से जग को रंजित किया

वाह रे कुशल रङ्गरेज !

अनन्त सौख्य

ऐसे मुनिराजों के

चरण-पङ्कज में

वन्दन कर !

स्वाध्याय

"पथिक"

•

नारी और पुरुष

इसी का है संसार

जब तक ये

३–६ के अङ्क जैसे नहीं बनेंगे

तब तक ये दो प्राणी पंछी

रसाल की डाली को मंजरियां इठला रही हैं

यौवन की मस्ती में

एक दिन ऐसा आयगा

कोई प्रेमी उठायगा

ौर प्यार करेगा चुम्बित कर

रके मधुर रस पियेगा

ाहो कलिका

ुरुष हो या नारी

ुखी पीली मृत

ारी अधीरा पुरुष नहीं

ीर्थङ्करों की जीवनी

ीव मात्र का उत्थान करती है

स्वाध्याय मग्न

वन का खेल, कभी यहां कभी वहां

भटकती-भटकती नष्ट हो जाती है

वैसा हीवन

जो भी मानव रहेगा

अवश्य ही

कर्म कटेंगे !

[illegible]

[illegible]

[illegible]

•

ये झरने

कलकल कलरव करते

पक्षियों का कलरव

जाम्बू, कनेरा, आम्र की श्रेणी

कितनी सुन्दर नव पल्लवित मंजरी

भ्रमर गुञ्जन, पीक स्वर सुनकर

पंछी कलरव वर

प्रकृति वहां खुली है

पर्वत मालाएं विन्ध्याचल की

मिलन मामा अङ्ग श्यामा

दया नहीं दिखाती
नैनों में लाली
डर जावे बालक
देख कर लँगोटी वाले
धनुष सर वाले
टेकरियों टेकरियों पर
घर घास फूस का
पथिक पथिका जाते हैं
नर्मदा की तट भूमि पर
लक्ष्मणी तीर्थ
पद्म प्रभु के पद पद्म में
कोटि-कोटि वन्दन हेतु।

हलुकर्मी

इस पूज्य भूमि पर

पुण्यों का संयोग है

विचरण कर

थिक पथिका

यात्रा का लाभ लेते हैं

जिस आत्मा को दर्शन मिल गया

सब कुछ मिल गया

भौतिक क्षण भंगुर

जीव इस ओर मुड़ता है

कर्मराज की सत्ता

इसीलिये दर्शन चाहिये।

दो भाई

"पथिक"

पाप पुण्य

प्रतिस्पर्धी है

रहते हैं साथ

दो भाई हैं

देखा ! पाप ने

कुमार के नयन मांगे ।

सत्य के सहारे

देखिये

दे दिया नेत्र दान

अकबर से भी
जीव दया, अहिंसा का
अनुसरण कराया
विजय हीर सूरिश्वरजी के वचनामृत
उपदेशक बने
अकबर की सभा में
नवरत्न
साहित्य–विनोद, प्रमोद करते
शिक्षा देते, मानव कर लेते
रक्षा करना हिन्दू धर्म की
किन्तु आज का राजतन्त्र
उलझा हुआ है पाप में
पाप सदा से आया है
शरण में पुण्य की
आरहा है समय
समर्पण का
प्रतीक्षा करो ! धीरज धरो !!

दो मित्र

"पथिक"

दुनिया की नगरी में
दो मित्र रहते हैं
सुख और दुःख
दुःख जहां रहता है
उसको तत्काल सुख भी पहुंच जाता है
सुख को देखा कि दुःख भी
उसका अनुवर्ती बन जाता है
धूप और छाया से दोनों साथ रहते हैं
मन के घर में दोनों का निवास है

राग द्वेषों की अनल में मन दुःख पाता है
ममता करुणा भक्ति के तोष में सुख पाता है
सुख मिलता है
नाना प्रकार की वेदना के अनुभव के बाद
पुण्य योग से
गुरु की गरिमा से
देव धर्म की श्रद्धा से
कर अवलम्बन जिन वाणी का
क्षमापन
मित्ति मे सव्व भूएसु
फिर अपराध कहां
शाश्वत सुख ।

राजतन्त्र

"पथिक"

आज जग के प्रांगण में
मानव मानव को नहीं देख रहा है
बना दैत्य हिंसक वृत्ति में
राजतन्त्र उलझा हुआ
सुलझाने में देर लग रही क्यों ?
विज्ञान के युग का सुलझा हुआ मानव
अपनी संस्कृति की रक्षा करने
सर्वस्व दे रहा है
जीवन का अवलम्बन

मूर्तियों, देवालयों का
हो रहा ह्रास
इधर मानव चन्द्रलोक की यात्रा में
क्यों मूर्तियों देवालयों की याद करे
पत्थर और मिट्टी पर्वत ही मिला
मिला न कुछ संघर्ष हुआ
साम्यवाद, समाजवाद
ये सब आकर्षक नारे हैं
सम्बन्धहीन दर्शन के किनारे हैं
[illegible]

अब जीवन का उत्थान करें
आत्म ज्ञान करें
मुनि योगी का
अनुसरण करें
उस पूज्यवर का
निर्देश मिले
अपने जीवन में विकास करें
दुनिया की माया से
कैसा है वेग संवेग ?
इससे बचना
आनन्द में रहें
आनन्द की सूचना मिलती रहे
यही अभिलाषा रहे
अखिल के कल्याण में
स्वयं मिटते रहें !

कांग्रेस

या जनसंघ जीते

या कोई और

देश की क्या उन्नति की

जिधर देखा

उधर देखा

लूट खसोट

बन गये नेता कुर्सी के

भाव-ताल-लयहीन अचेतन हृदयहीन

सम्हल कर चलना

समय अनुकूल या प्रतिकूल होता जा रहा है

दृष्टिकोण ठीक कर

स्व को मत भूल

सोऽहम् सोऽहम् जपना!

लक्ष्मी

३

"वंचित"

•

लक्ष्मी

जल तरङ्ग सग चञ्चल
तड़ित द्युति सम क्षण भंगुर
चलायमान अस्थिर नटिनी सम
जन पागल भ्रमण करता
फिर भी वरण नहीं करता
कैसा त्यागी ?
पुत्र कलत्र त्याग
प्रवास करता वन–वन

गिरी गह्वर में
फिर भी लक्ष्मी के मोह पाश में
ढूंढता फिरता सुख का धाम
लक्ष्मी का निवास
पुण्य में है
सत्य में है
सत्य और पुण्य का बन्धन ही कुछ बांध देता है इसको
यह लक्ष्मी है !
नहीं रखती मान मर्यादा
वय की, कुल की, विद्या की, करुणा की
जो इससे परे है
आकर्षण में खिंचता नहीं है
सत्य ही है
सन्तुष्टि का अधिकारी वही है ।